रसेश्वरदर्शन

गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'
अध्यक्ष - राजस्थान आयुर्वेद विज्ञान परिषद्
एवं साहित्य-सरोवर-संस्था

जीवन के प्रति मनुष्य का दृष्टिकोण ही भारतीय संस्कृति में दर्शन के नाम से जाना जाता है। प्रत्येक दर्शन दुःखों के नाश किंवा सुख की प्राप्ति के उपाय बतलाता है। आयुर्वेद दर्शन भी इस हेतु महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस आयुर्वेद दर्शन को 'रसेश्वर दर्शन' के नाम से जाना जाता है।

वेदों का भाष्य लिखने वाले सायणाचार्य के ही भाई का नाम माधवाचार्य था। इन्होंने 'सर्वदर्शनसंग्रह' नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का निर्माण किया। इनमें अन्य पन्द्रह दर्शन विशेष का वर्णन करने के साथ ही इस रसेश्वर दर्शन का भी वर्णन किया है। इस ग्रन्थ के लेखक माधवाचार्य सायणाचार्य के बड़े भाई थे। इनके पिता का नाम मायण और माता का नाम श्रीमती था। वे बोधायन सूत्र के मानने वाले यजुर्वेदी ब्राह्मण थे। दक्षिण भारत में तुंगभद्रा नदी के किनारे पम्पा सरोवर के समीप विजयनगर में एक सुप्रसिद्ध साम्राज्य था। इस साम्राज्य की स्थापना महाराज हरिहर प्रथम ने माधवाचार्य की प्रेरणा से ही की थी। इस राज्य के मन्त्री माधवाचार्य ही थे। इनका शासनकाल सन् 1360 ई० के आसपास माना जाता है। हरिहर के पश्चात् उनके छोटे भाई बुक्क वहाँ के राजा बने।

बुक्क के शासनकाल में ही माधवाचार्य ने संन्यास ग्रहण कर लिया था और वे शृंगेरी मठ के शंकराचार्य बन गये थे। अब उनका नाम माधवाचार्य न रह कर विद्यारण्य हो गया था। इस संन्यास की अवस्था में ये सन् 1379 ई. से लेकर 1385 ई. तक रहे। सन् 1385 में 90 वर्ष की अवस्था में इनका निधन हुआ।

आचार्य चरक ने रसायनाध्याय के प्रथम पादान्त में कहा है -

न केवलं दीर्घमिहायुरश्नुते
रसायनं यो विधिवन्निषेवते।
गतिं च देवर्षिनिषेवितां शुभां
प्रपद्यन्ते ब्रह्म तथेति चाक्षयम् ॥

चरक चि- 1-1-80

- इह रसायनस्य स्वर्गापवर्गसाधनत्वं
विशुद्धसत्त्वकर्तृत्वात। योगीन्द्रनाथसेन

अर्थात् रसायन का विधिवत प्रयोग करने से केवल दीर्घ आयु की ही प्राप्ति नहीं होती, अपितु नियमपूर्वक जो रसायन का प्रयोग करता है, वह देवता और ऋषियों से सेवित उत्तम गति को प्राप्त करता है, और अक्षर ब्रह्म को प्राप्त कर मुक्त हो जाता है।

महेश्वर (शिव) को परम तत्त्व के रूप में स्वीकार करने वाले दार्शनिक माहेश्वर कहलाते हैं। उक्त सर्वदर्शनसंग्रह में चार माहेश्वरों का वर्णन है- नकुलीश पाशुपत, शैव, प्रत्यभिज्ञा और रसेश्वर। ये सभी जीवात्मा का परमात्मा से ऐक्य रूप मानते हैं। रसेश्वर दर्शन इन सब से इसलिये पृथक् है, कि इसमें जीवन्मुक्ति के लिये रसेश्वर, (पारद) का प्रयोग अनिवार्य है। शुद्ध पारद से शरीर को अजर-अमर बना दिया जाता है। बिना इसके सेवन किये जीवन्मुक्ति नहीं मिल सकती। जीवन्मुक्ति वह है, जिसमें आत्मतत्त्व का साक्षात्कार हो जाय, अभ्यास की निरन्तरता से मिथ्याज्ञान का विनाश हो जाय किन्तु प्रारब्धकर्म भोगने के लिये पुन: जीवन धारण किया जाय। इसे अपर मुक्ति भी कहते हैं।

रसेश्वरदर्शन के अनुसार शरीर को अजर-अमर किये बिना जीवन्मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। यह पारद के बिना हो नहीं पाती, क्योंकि जो संसार के कष्टों से बचाकर मोक्ष प्रदान करे, वही तो पारद है -

संसारस्य परं पारं दत्तेऽसौ पारदः स्मृत।

कई विद्वानों का मत है, कि पारद शब्द का अपभ्रंश ही पारस है, जो लोहे को सोना बना देता है और अन्य महत्त्व पूर्ण कामनाओं की पूर्ति करता है। 'रोगमात्रस्य पारमन्तं ददातीति पारद:' जो रोगमात्र से छुटकारा दिला कर मोक्ष प्रदान करावे, वही तो पारद है। कहा गया है -

अचिराज्जायते देवि! शरीरमजरामरम्।
मनसश्च समाधानं रसयोगादवाप्यते ॥
(रसेन्द्र चिन्ताम)

संसार के कष्टों से मोक्ष दिलाने के कारण ही इस रस को पारद कहते हैं - 'पारदो गदितो यस्मात् परार्थं साधकोत्तमै:' अर्थात् जो संसार के दूसरे पार (मोक्ष) की ओर पहुँचा दे, वही पारद कहलाता है। रसार्णव ग्रन्थ में शिव पार्वती से कहते हैं - हे देवि! यह पारद मेरे शरीर का रस है अत: 'रस' कहलाता है। शिव के प्रत्यंग से संभव होने के कारण यह 'सूत' के नाम से भी जाना जाता है।

यहाँ यह लिख देना आवश्यक होगा कि सर्वदर्शनसंग्रह के टीकाकार ने रसार्णव नामक रसविषयक ग्रन्थ को ई० पू० का प्राचीन ग्रन्थ कहा है, किन्तु आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने इसे बारहवीं शती का ग्रन्थ माना है। इन्होंने कई हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इस रसार्णव ग्रन्थ का एक प्रामाणिक संस्करण सन् 1910 में एशियाटिक सोसायटी बंगाल की ओर से प्रकाशित करवाया। रसेन्द्र चिन्तामणि, रसरत्नसमुच्चय, रसकामधेनु आदि बहुत से रसग्रन्थों में इसी अपने सर्व दर्शन संग्रह के रसेश्वरदर्शन प्रकरण से भी इसी ग्रन्थ के उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं। माधवाचार्य ने भी अपने सर्वदर्शनसंग्रह के रसेश्वरदर्शनप्रकरण में भी इसी ग्रन्थ के उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। इसी में रसार्णव का उद्धरण प्रस्तुत करते हुये कहा गया है - छह दर्शनों में शरीर नाश के बाद ही मुक्ति का निर्देश हुआ है। यह मुक्ति प्रत्यक्षरूप से तो रस-रसायनों के सेवन से ही मिलती है -

'तस्मात् तं रक्षयेत् पिण्डं रसैश्चैव रसायनैः'।

इस सम्बन्ध में गोविन्द भगवत्पादाचार्य (जो आदि शंकराचार्य के गुरु थे) भी कहते हैं - मुक्ति के लिये सदा प्रयत्न करते रहना चाहिये। यह मुक्ति ज्ञान से होती है, और यह ज्ञान निरन्तर अभ्यास से प्राप्त होता है। यह अभ्यास

तभी संभव है, जब शरीर नीरोग रहे और शरीर को नीरोग रखने के लिये रस-रसायनों का सेवन करते रहना चाहिये। इससे शरीर दिव्य तथा सुदृढ़ बन जाने में समर्थ होता है। जीवनमुक्ति की कामना करने वाले योगी को पहले दिव्य सुदृढ़ शरीर बनाना आवश्यक है, और यह पारद के प्रयोग से ही संभव है। बहुत से लोगों ने इस रस की शक्ति से दिव्य शरीर धारण किये हैं। पारद किं वा रस की यह सारी महिमा उसी रस की है, जो शुद्ध संस्कारित हो, वही वस्तुतः रसेश्वर है, जो दिव्य देह प्रदान करता है।

आयुर्वेद के इन रस-रसायनों में यही संस्कारित विशुद्ध पारद प्रयुक्त होता है। इसको संस्कारित करने हेतु इसके अठारह संस्कारों का वर्णन मिलता है, जिनमें आठ संस्कार मुख्य हैं। पारद के आठ संस्कार पूर्ण करने के पश्चात् वह शरीरोपयोगी सिद्ध होता है।

पाञ्चभौतिक शरीर के लिये पाञ्चभौतिक वनौषधियों की उपयोगिता सर्वसिद्ध है। इनके विविध स्वास्थ्य प्रदायक योगों से आयुर्वेदीय ग्रन्थ भरे पड़े है। आयुर्वेद दर्शन के नाम से व्यपदिष्ट यह रसेश्वरदर्शन भी इन वनौषधियों की श्रेष्ठता एवं गुणवत्ता को स्वीकार करता है। पारद के इन सभी संस्कारों को सिद्ध करने में तथा इस संस्कारित पारद के साथ गन्धक का संयोग कर जो भी रस-रसायन तैयार किये जाते हैं, उनमें भी इन वनौषधियों की प्रमुख भूमिका रहती है, या यों कहिये कि इन वनौषधियों के सहयोग किंवा संमिश्रण के बिना न पारद के संस्कारित होने की प्रक्रिया सिद्ध होती है और न रस-रसायनों के योग ही विनिर्मित हो सकते हैं। अत: यह रसेश्वरदर्शन भी इन रसपूर्ण वनौषधियों के संयोग से ही आयुर्वेददर्शन कहलाने का अधिकारी हो सकता है।

पारद के अष्टादश संस्कार करने के बाद एक ओर तो पारद ताम्र, नाग एवं बंग को स्वर्ण एवं रजत में बदल सकता है, तथा दूसरी और शरीर में उपयुक्त होने पर यह शरीर को जरा एवं व्याधियों से विमुक्त कर लोहवत् सुदृढ़ बना सकता है। प्रारम्भ के आठ संस्कार जो स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, उत्पातन, पातन, रोधन या बोधन, नियामन एवं दीपन या सन्दीपन हैं। इन आठ संस्कारों से पारद विभिन्न दोषों से मुक्त हो जाता है, और इसमें वह बुहुक्षा जागृत हो जाती है। इसके बाद तो दस संस्कारों के करने से पारद में देहसिद्धि एवं लौह सिद्धि प्रदान करने की उत्कृष्ट एवं चमत्कारी शक्ति उत्पन हो जाती है। जिज्ञासु को वैद्य श्री वासुदेव मूलशंकर द्विवेदी द्वारा लिखित 'पारद विज्ञानीयम्' ग्रन्थ का मनन करना चाहिये।

'चपेट पंजरिका' नामक स्तोत्र विशेष में शंकराचार्य ने चिन्ता व्यक्त की है, कि -

बालस्तावत् क्रीडासक्तः तरुणस्तावत् तरुणीरक्तः।
वृद्धस्तावत् चिन्तामग्नः पारे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः॥

ऐसी स्थिति में मुक्ति कैसे संभव है, किन्तु रसेश्वर दर्शन के अनुसार मुक्ति यदि ज्ञेय है, तो ज्ञाता भी किसी जीवधारी को होना होगा। सभी विद्याओं का समूह तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का मूल एक मात्र इस स्वस्थ शरीर को छोड़ कर दूसरा क्या हो सकता है? और शरीर को स्वस्थ तथा कार्य-समर्थ बनाने में इस विशुद्ध रसेश्वर का उपयोग आवश्यक है।

रसहृदयकार (गोविन्दपाद द्वारा विरचित) ने लिखा है कि हमारे रससंप्रदाय में कही गयी विधि के अनुसार दिव्य शरीर बना कर ब्रह्म के साथ एकता की स्थापना के द्वारा परमतत्त्व प्राप्त होने पर पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है। तब दोनों भौंहों के बीच में स्थित रहने वाली तथा जो अग्नि विद्युत् तथा सूर्य की तरह संसार को प्रकाशित करती है, वह चित-चेतनता के स्वरूप में वर्तमान ज्योति किन्हीं, किन्हीं पवित्र दृष्टि वाले व्यक्तियों के समक्ष प्रकाशित होती है। परमानन्द की प्राप्ति कराने वाला एक (अद्वैत) रस से परिपूर्ण, परमतत्व के रूप में, ज्योति ही जिसका स्वरूप है, जिसमें किसी विकल्प का स्थान नहीं, जिससे सभी कष्ट मिट जाते हैं, जो ज्ञान का विषय है, शान्त है, अपने में ही अनुभव की वस्तु है-

उसमें अपने मन को लगा कर, प्रकाशित होने वाले समर्थ चिन्मय संसार को देखते हुये मनुष्य, सभी कर्मबन्धनों के नष्ट हो जाने पर यहीं पृथ्वी पर ब्रह्मत्व प्राप्त कर लेता है।

वैदिक प्रभाव भी है - वह परमात्मा रस ही है। वह पुरुष रसेश्वर (पारद) को पाकर आनन्दयुक्त होता है, -

'रसो वै सः । रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति ' (तैत्तिरीयो पनिषद् २-7-1) इति ।

इस प्रकार दैन्य-दुःख के भार से बचने का उपाय रस ही है। यह रस ब्रह्म के समान है, जो दीनता और संसार के भय से हमें मुक्ति दिलाने वाला है। यो ब्रह्मोन सदैन्यसंस्कृतिभयात्यागादरौ पारदः।